सिविल-सेना संबंध संकट में
Civil-Military Relations in Crisis

अनित मुखर्जी
Anit Mukherjee
September 24, 2012

हाल ही में भारत में सिविलियनों और सेना के बीच के बिगड़ते संबंधों पर लोगों का ध्यान बार-बार गया है. बहुत से लोग, खास तौर पर सेना से जुड़े लोग यह तर्क देते हैं कि जिस समय सन् 2006 में वेतन आयोग को लेकर सिविलियनों और सेना के बीच बहुत बुरे ढंग से संघर्ष हुआ था, उस समय यह विवाद बहुत लंबा खिंच गया था. परंतु पिछले साल हुए विवादों की तुलना में यह विवाद कोई खास नहीं था. सेना प्रमुख जनरल वी.के. सिंह के कार्यकाल के दौरान अनेक विवाद पहली बार उठे. किसी सेना प्रमुख ने पहली बार रक्षा मंत्रालय के खिलाफ़ उच्चतम न्यायालय में गुहार लगायी, रक्षा मंत्रालय ने वरीयता को स्वीकार किया और सेना प्रमुख के पद के उत्तराधिकार की पावनता का समर्थन किया और सेना प्रमुख द्वारा प्रधानमंत्री को रक्षा मंत्रालय के उच्च स्तर के कुप्रबंधन के कारण रक्षा तैयारियों में आयी ढील की शिकायत के लिए लिखे गये अत्यंत गुप्त पत्र के लीक होने की बात को गंभीरता से लिया है.

जब *इंडियन एक्सप्रैस* ने पिछली जनवरी में यह खबर छापी कि बिना किसी सूचना के सेना की कुछ टुकड़ियों के राजधानी के पास पहुँच जाने की वजह से हड़कम्प मच गया है तो सिविलियनों और सेना के बीच अविश्वास और भी बढ़ गया. यद्यपि प्रधानमंत्री ने तुरंत ही इस खबर का खंडन किया तो भी मीडिया ने इस तथ्य को रेखांकित किया कि सिविलियनों और सेना के बीच संबंध बहुत बिगड़ गये हैं और इस पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है. सेनाध्यक्ष वी.के. सिंह की सेवानिवृत्ति के कारण मामला कुछ समय के लिए शांत हो गया और अब यह मुख्य खबर भी नहीं रही, लेकिन समस्या के मूल में जो व्यवस्था और संगठन संबंधी समस्याएँ हैं, उनका समाधान अभी भी नहीं हो पाया है. इसलिए हो सकता है कि सिविलियनों और सेना के बीच बढ़ती खाई के कारण देर-सबेर फिर कुछ और घटनाएँ सामने आएँ.

रक्षा और विदेश मंत्रालय तथा सेना के मुख्यालय साउथ ब्लॉक में विज़िट करने वाले अनेक मुलाकाती नौकरशाही के इन केंद्रों के बीच संवादहीनता को देखकर हतप्रभ रह जाते हैं. इस संवादहीनता के कारण हैं, निचले स्तर पर ही संवाद होना, रक्षा मंत्रालय के सिविलियन नौकरशाहों के बीच अविश्वास और सेना का सूचनाओं से अवगत न रहना. यही कारण है कि सेना अपने आपको भारत के लोकतंत्र से अलग-थलग पाती है. रक्षामंत्री ए.के. ऐंथनी ने इस तथ्य को स्वीकार किया है और हाल ही में दोनों गुटों से "कड़वाहट" खत्म करने की अपील की है. रक्षा मंत्रालय में सैन्य अधिकारी न के बराबर हैं और जनरलिस्ट सिविल सेवा है, इसलिए निर्णय लेने की पर्याप्त क्षमताओं के कारण ही सिविलियन मामलों में समस्याएँ पैदा हो जाती हैं. इसके विपरीत सेना आंतरिक मामलों में पूरी तरह से स्वायत्त है और संगठनात्मक ढाँचे के पुराने ढर्रे पर चल रही है, जिसके कारण सेना प्रमुख, नीति संबधी परिवर्तन लाने में सक्षम हैं और कभी-कभी अपनी सनक या मर्ज़ी के कारण भी नीतियों में परिवर्तन कर लेते हैं. और दूसरी तरफ़ 1962 में सीमा पर लड़े गये सीमा युद्ध में राजनीतिज्ञों की दखलंदाज़ी के कारण बुरी तरह से पराजित होने के कारण उस समय सारा दोष राजनीतिज्ञों के मत्थे मढ़ दिया गया था. यही कारण है कि राजनीतिज्ञ सेना के मामलों में कम ही दखल देते हैं. वास्तव में भारत में सिविलियनों और सेना के बीच विचित्र संबंधों के कारण ही संवादहीनता की स्थिति बनी रहती है. संगठनात्मक दृष्टि से समस्यामूलक होने के कारण सिविलियनों और सेना के बीच विवाद बने रहते हैं. इस समस्या के बीज आज़ादी के आरंभिक कुछ वर्षों में ही बो दिए

गए थे. भले ही इसके पीछे कोई खास मंशा नहीं थी, फिर भी सेना का नियंत्रण सिविलियनों के हाथ में होना यह अपने-आप में भारतीय लोकतंत्र का ही प्रतिफल है.

सिविलियनों के कठोर नियंत्रण की परंपरा कोई तयशुदा बात नहीं है, लेकिन पं. नेहरू के सशक्त और विशाल व्यक्तित्व के कारण और सेना को राजनीति से अलग रखने की सेना की अपनी मंशा के कारण भी यह परंपरा बनी. इसका श्रेय लॉर्ड माउंटबेटन और लॉर्ड इस्मे को भी दिया जा सकता है, क्योंकि इन्होंने ही उच्च स्तर पर स्वाधीन भारत के रक्षा संगठन की आधारशिला रखी थी. उन्होंने समितियों की एक ऐसी प्रणाली की सिफ़ारिश की थी,जिसमें राजनेताओं, नौकरशाहों और सेना के बीच निरंतर संवाद और विचार-विनिमय होता रहे. परंतु माउंटबेटन के कागज़ातों को देखकर सिविलियनों और सेना के बीच अंतःक्रियात्मक संबंधों की प्रकृति सामने आई है और यह भी पता चला है कि ये संबंध कैसे विकसित हुए और अंत में इसे लेकर माउंटबेटन कैसे आगबबूला हो गए.

भारत छोड़ने के बाद भी माउंटबेटन नीति संबंधी मामलों में गहरी रुचि लेते रहे और इस विषय पर पं. नेहरू और अनेक वरिष्ठ सिविलियन और सैन्य अधिकारियों के साथ पत्र-व्यवहार करते रहे. उनके पत्र-व्यवहार से पता चलता है कि उनके बीच वरीयता और कारोबारी नियमों के संचालन और अंततः सिविलियन नौकरशाहों और सेना के बीच सत्ता के वे कौन-से बिंदु थे जिनके कारण तनाव और विवाद निरंतर बना रहा. माउंटबेटन रक्षा मंत्रालय में सैन्य अधिकारियों और विशेषज्ञों की कमी को लेकर बहुत चिंतित रहते थे और उन्होंने रक्षा मंत्री कृष्णमेनन को इस मामले पर ध्यान देने का अनुरोध भी किया था. लेकिन किसी ने उनकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया. यह भी विडंबना है कि उसी समय ब्रिटिश माउंटबेटन के मार्गदर्शन में रक्षा सुधारों को लागू करने के लिए अपने उच्च रक्षा संगठनों में रद्दोबदल कर रहे थे. रक्षा सुधारों को लागू करने में नेहरू को मनाने में विफल होने के बाद भी माउंटबेटन ने हिम्मत नहीं हारी और बाद के वर्षों में नेहरू के बाद के प्रधानमंत्रियों शास्त्री, इंदिरा गाँधी और अपनी मृत्यु से पूर्व मोरारजी देसाई से भी सीधे या परोक्ष रूप में संपर्क करते रहे. लेकिन उनके सभी प्रयास विफल रहे. भारत के उच्च रक्षा संगठनों के पुरोधा के प्रयासों को अनकिया कर दिया गया.

यह संवाद आगे क्यों नहीं बढ़ पाया और अब आगे बढ़ भी नहीं सकता, इसका एक कारण यह भी है कि ऐतिहासिक रिकॉर्ड अब नहीं रहे और इसका कारण भी यही है कि वर्गीकरण नीति का अनुसरण नहीं किया गया. यह खुला रहस्य है कि रक्षा मंत्रालय और सशस्त्र सेनाएँ न तो सार्वजनिक अभिलेख अधिनियम या सार्वजनिक अभिलेख नियमों का पालन करती हैं और न ही उन्होंने दस्तावेज़ों को अवर्गीकृत करने के लिए कोई ढाँचा बनाया है. यह भी स्पष्ट नहीं है कि इन दस्तावेजों को अभिलेखित करके उचित ढंग से सुरक्षित रखा गया है या नहीं. यह भी नहीं पता है कि वे गुम हो गए हैं या फिर उन्हें नष्ट कर दिया गया है. यद्यपि कई लोगों ने इस बारे में हाय-तोबा तो किया है,लेकिन कदाचित् यह समझ नहीं आता कि यह सिविलियनों के नियंत्रण की गुणवत्ता को किस तरह से कम करता है. सिविलियन नौकरशाह, जो इस संबंध में विशेषज्ञता नहीं रखते, न तो स्वयं को समझाने में सक्षम हैं और न ही चक्र को पुनर्निर्मित करने में सक्षम हैं. यही कारण है कि सैन्य मामलों में न तो उनकी कोई समझ है और न ही वे इस बारे में संवाद करने में सक्षम हैं.

भारत के रणनीतिक समुदाय के अनेक सदस्यों ने यह माना है और कुछ विवेकपूर्ण नीति संबंधी उपाय सुझाये हैं ताकि सिविलियनों और सेना के बीच सौहार्द्रपूर्ण संबंध बने रहें. उदाहरण के लिए अन्य अनेक सदस्यों के अलावा अरुण प्रकाश ने नौकरशाहों के साथ समन्वय स्थापित करने और टीमवर्क के लिए

सिविलियनों और सैन्य अधिकारियों की क्रॉस पोस्टिंग का सुझाव दिया है. जनरलिस्ट सिविल सेवा से उठने वाली समस्याओं को स्वीकार करते हुए एन.एन. वोहरा ने रक्षा का सिविलियन मंत्रालय या राष्ट्रीय सुरक्षा संवर्ग बनाने की वकालत की है. रणनीतिक समुदाय के लगभग सभी सदस्यों ने और अधिक विवेकपूर्ण और परिपक्व अवर्गीकरण नीति बनाने की माँग की है.

परंतु दुर्भाग्यवश राजनेता इन मुद्दों पर होने वाली चर्चा में हमेशा नदारद ही रहे हैं. ए.के. ऐंथनी सबसे अधिक समय तक और निरंतर इस पद पर बने रहने वाले रक्षा मंत्री रहे हैं. इसलिए उनके कार्यकाल में अधिक स्थिरता की अपेक्षा की जा सकती थी, लेकिन उनके कार्यकाल में ही सिविल-सेना के बीच तनाव के कुछ अत्यंत गंभीर मुद्दे सामने आए. राजनैतिक दल और रक्षा संबंधी स्थायी संसदीय समिति भी अपने कर्तव्यपालन में चूकती रही, क्योंकि उन्होंने रक्षा सुधारों, सिविल-सेना संबंधों और उच्च स्तर पर रक्षा प्रबंधन जैसे मामलों पर कभी गंभीर चर्चा नहीं की. इसके बजाय यदि कभी उन्होंने रुचि दिखाई तो भी उनका ध्यान स्कैंडलों और कार्मिक मामलों तक ही सीमित रहा, भले ही ये स्कैंडल वास्तविक रहे हों या काल्पनिक. इससे यह साफ़ हो जाता है कि जब तक सशक्त रूप में राजनैतिक हस्तक्षेप नहीं होता तब तक सिविल-सेना के बिगड़ते संबंधों के कारण भारत की रक्षा तैयारियों में आने वाली ढिलाई में कमज़ोरियाँ इसी तरह बनी रहेंगी.

अनित मुखर्जी 'कैसी' के पोस्ट डॉक्टरल रिसर्च फ़ैलो हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>